10042015-ls-ngp-04.qxd 04/10/2015 2:54 PM Page 1

और... एक शेर

सरहदों के पार जो एक पोल नस्ब है,
मुझको तो अपने बिछड़े यार सा लगे।
-नसीम चमन

लोकमत समाचार
नागपुर, शुक्रवार, 10 अप्रैल 2015

लोकमत समाचार

तमसो मा ज्योतिर्गमय

धैर्यवान मनुष्य आत्मविश्वास की नौका पर सवार होकर आपत्ति की नदियों को सफलतापूर्वक पार कर जाते हैं.
■ भर्तृहरि

संपादकीय

किसानों की सही सुनवाई होगी !

किसानों को सूखा, बेमौसम बारिश और ओलावृष्टि से होने वाले नुकसान का मुआवजा बढ़ाने के लिए खुद केंद्र सरकार ने पहल की है तो इसका स्वागत किया जाना चाहिए. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और उनके मंत्री इन दिनों वैसे भी भूमि अधिग्रहण विधेयक को लेकर किसानों को सफाई देने में लगे हुए हैं. इसी क्रम में यह घोषणा की जाती है कि किसानों को अब मौजूदा मापदंड की तुलना में डेढ़ गुना क्षतिपूर्ति दी जाएगी तो समझ लेना चाहिए कि किसानों की समस्याओं को गंभीरता से लिया जा रहा है. यह किसी से छिपा नहीं है कि पिछले कुछ सालों में बेमौसम बारिश और ओलावृष्टि की वजह से किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ रहा है. इसी कारण विभिन्न राज्य सरकारों के समक्ष बार-बार मुआवजे का सवाल उठ खड़ा होता है. इससे बड़ा सवाल मुआवजे के मापदंड का होता है. अब तक जो होता आया है, उससे यही साबित होता है कि नुकसान भरपाई के नाम पर किसानों के साथ मजाक ही होता है. सरकारी बाबू लोग दो चीजें देखते आए हैं- एक तो जोत का क्षेत्र और दूसरा फसल नष्ट होने का प्रतिशत. यदि फसल पचास फीसदी नष्ट हो चुकी है तो मदद की उम्मीद रहती है लेकिन यदि इससे कम नुकसान हुआ है तो कुछ नहीं मिलेगा. इस विडंबना को ढोने के लिए किसान मजबूर थे पर अब यदि 33 प्रतिशत फसल का भी नुकसान हुआ है तो मदद दी जाएगी, निःसंदेह इससे ज्यादा किसानों को अधिक सहायता मिल सकेगी. इसके अलावा, मुआवजे की राशि को भी बढ़ाकर डेढ़ गुना कर दिया गया है. केंद्र सरकार ने नुकसान के आकलन के लिए मंत्रियों को विभिन्न राज्यों में भेजा है. उनकी रिपोर्ट की समीक्षा की जा रही है. वैसे कृषि मंत्री राधामोहन सिंह बता चुके हैं कि बेमौसम वर्षा और ओलावृष्टि के कारण देशभर में 113 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में रबी फसल को नुकसान हुआ है. अहम बात यह है कि प्रभावित किसानों को नुकसान भरपाई कितने दिनों में दी जाएगी, इसकी मियाद तय नहीं है. मियाद और मुआवजे की राशि को लेकर जितना मजाक हो चुका है सो चुका है, अब नहीं होना चाहिए. सरकार यदि बदली है तो किसानों को भी यह यकीन होना जरूरी है कि उनकी सुनवाई हो रही है. वे इस बात से अच्छी तरह वाकिफ हैं कि कार्पोरेट सरकारों के जमाने में उनकी जितनी सुन ली जाए, बहुत है. देश भर में दिनों-दिन जोत का क्षेत्र घटते जाने के बावजूद हम कृषि उपज के मामले में आत्मनिर्भर हैं. हमारा किसान आज भी कुदरत की चुनौतियों का सामना कर लेता है. कभी-कभार वह टूट भी जाता है और अपनी ईहलीला समाप्त कर लेता है. आत्महत्या के बाद किसान के परिजनों को सहायता देने के बजाय उसे उचित समय पर मदद का हाथ बढ़ाना अति आवश्यक है. किसी भी सरकार को इस पहलू पर गौर फरमाना चाहिए कि कृषि फसल के मामले में ही सरकार को नुकसान नहीं उठाना पड़ता है. इसके बावजूद किसानों को प्राकृतिक आपदा से होने वाले नुकसान की भरपाई पाने के लिए बेमियादी इंतजार क्यों करना पड़ता है? ■■

इज्जत का सवाल

लघुकथा

गोवर्धन यादव

शादी से पूर्व सरला ने अपना निर्णय कह सुनाया था कि अभी वह और आगे पढ़ना चाहती है. उसके होने वाले भावी पति ने अपनी सहमति जताते हुए उससे वादा किया था कि शादी के बाद वह आगे पढ़ सकती है और समय आने पर कोई अच्छी सी नौकरी भी कर सकती है. इसी आश्वासन के बाद वह शादी करने के लिए राजी हो पाई थी.

बीए तो वह पहले ही कर चुकी थी, उसने अब एम.ए. करने के फार्म आदि भर दिए थे. एक समय आया कि उसने पूरे संभाग में प्रथम स्थान बनाया था.

एमए में प्रथम स्थान बना चुकने के बाद उसने पीएससी की परीक्षाएं देने का मानस बनाया. कड़ी मेहनत और लगन ने वह सब कर दिखाया जिसकी उसने कभी कल्पना की थी. उसे तो अब पूरा विश्वास हो चला था कि यदि वह यूपीपीएससी की परीक्षा दे दे तो उसमें सफलता हासिल कर सकती है.

पीएससी का रिजल्ट आने के कुछ समय बाद पर्सनल इंटरव्यू दिया और वह उसमें भी उत्तीर्ण हो गई. कुछ समय पश्चात उसकी पोस्टिंग तहसीलदार के पद पर हो गई. एक ओर उसे अपनी सफलता पर नाज हो रहा था तो दूसरी तरफ घर में हंगामा मचा हुआ था. घर के सारे लोग इस बात पर खुश हो रहे थे जबकि उसका पति अवसाद में घिरा बैठा था. वह नहीं चाहता था कि जिस तहसील कार्यालय में वह एक मामूली बाबू की हैसियत से काम कर रहा है, उसकी बीवी उसी ऑफिस में उसकी बॉस बनकर काम करे. ■■

शिक्षा की स्थिति शोचनीय

विश्वनाथ सचदेव
जाने-माने स्तंभकार

पांच साल हो गए देश में शिक्षा के अधिकार कानून को लागू हुए. इस कानून के अनुसार 31 मार्च 2013 तक देश के हर बच्चे को स्कूल में होना चाहिए था, हर स्कूल में उचित संख्या में प्रशिक्षित अध्यापक होने चाहिए थे, हर स्कूल की चारदीवारी होनी चाहिए थी, बच्चों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था होनी चाहिए थी, छात्र-छात्राओं के लिए हर स्कूल में शौचालयों की व्यवस्था होनी चाहिए थी. लेकिन आज की तारीख तक इनमें से एक भी काम पूरा नहीं हुआ है. इस स्थिति को क्या नाम देंगे आप? संसाधनों की कमी का परिणाम अथवा कानून लागू करने के लिए जिम्मेदार लोगों की आपराधिक उपेक्षा का परिणाम? व्यवस्था और सरकार कुछ भी कहती रहे, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में आज जो अराजकता-सी बनी हुई है, उसके लिए दोषी हमारी नीति भी है और नीयत भी.

आज की हकीकत यह है कि (2011 की जनगणना के अनुसार) देश के छह से चौदह वर्ष आयु के लगभग बीस करोड़ बच्चों में से साढ़े तीन करोड़ बच्चे स्कूलों के बाहर हैं. देश के कुल स्कूलों में से आधे स्कूलों में लड़कियों और लड़कों के लिए पृथक शौचालय नहीं है. एक तिहाई स्कूलों में पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्था नहीं है. दो-तिहाई स्कूलों में शिक्षा के अधिकार में वर्णित खेल-सामग्री नहीं है. देश में अध्यापकों के 12 लाख से अधिक स्थान रिक्त पड़े हैं. चौथी-पांचवीं तक आते-आते दस से बीस प्रतिशत तक बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं. बिहार में ऐसे बच्चों की संख्या 12.75 प्रतिशत है और उत्तर प्रदेश में 22.52 प्रतिशत. यह सारे आंकड़े 'असर' संस्था द्वारा सन 2014 में किए गए सर्वेक्षण का परिणाम हैं. 'असर' हर साल इस तरह का सर्वेक्षण करता है, हर साल ऐसे तथ्य सामने आते हैं, हर साल इस संदर्भ में बुलबुले-से उठते हैं, और फिर फूट जाते हैं. फिर इन तथ्यों को भुला दिया जाता है.

'असर' शिक्षा के स्तर के बारे में भी सर्वेक्षण करता है. सन 2014 के सर्वेक्षण में बिहार में पांचवीं कक्षा के 51.9 प्रतिशत बच्चे दूसरी कक्षा में पढ़ाई जाने वाली किताब को भी ठीक से नहीं पढ़ पा रहे थे, राजस्थान में यह संख्या 53.3 प्रतिशत थी और उत्तर प्रदेश में 55.3 प्रतिशत. लगभग ऐसी ही स्थिति देश भर में उन स्कूलों में थी, जिनके माध्यम से हम देश के हर बच्चे को शिक्षा देने की स्थिति में पहुंचने की कोशिश कर रहे हैं. शिक्षा की दृष्टि से केरल हमारे देश का शायद सर्वाधिक उन्नत प्रदेश है. 'असर' की इस रिपोर्ट के अनुसार केरल में भी पांचवीं में पढ़ने वाले लगभग एक तिहाई बच्चे (33.2 प्रतिशत) दूसरी कक्षा की किताबें ढंग से नहीं पढ़ पा रहे थे.

> कितने छात्र, कितने स्कूल, कितने अध्यापक से अधिक महत्वपूर्ण सवाल कैसे छात्र, कैसे स्कूल और कैसे अध्यापक हैं. आज देश में प्रति छात्र पर प्रति वर्ष साढ़े चार हजार रुपए खर्च हो रहा है. सवाल यह नहीं है कि यह राशि पर्याप्त है या नहीं, सवाल यह है कि इस व्यय का परिणाम क्या निकल रहा है.

'असर' का यह सर्वेक्षण अपने आप में अकेला नहीं है. पिछले साल विश्व-बैंक ने भी 'दक्षिण एशियाई देशों में ज्ञान' शीर्षक के अंतर्गत एक सर्वेक्षण किया था और उसका निष्कर्ष यह था कि भारत समेत दक्षिण एशियाई देशों में कक्षा पांच में पढ़ने वाले विद्यार्थी न ककहरा पूरी तरह से जानते हैं और न ही उन्हें दो अंकों का जोड़-घटाना ही ठीक तरह से आता है. यह स्थिति छात्रों की ही नहीं है. विश्व बैंक के सर्वेक्षण में यह भी पाया गया था कि प्राथमिक शालाओं में पढ़ानेवाले-अध्यापक भी वह सब नहीं जानते थे जो उन्हें जानना चाहिए था. अपनी इस रिपोर्ट में विश्व बैंक ने स्पष्ट रूप से लिखा था कि दक्षिण एशिया के देश शिक्षा पर खर्च तो कर रहे हैं, लेकिन शिक्षण की गुणवत्ता खराब होने के कारण इन देशों का आर्थिक विकास ही अवरुद्ध नहीं हो रहा, बल्कि युवाओं में बेरोजगारी भी बढ़ रही है. यह बेरोजगारी गरीबी को पालती है और यह गरीबी देश को पिछड़ा बनाती है.

विश्व बैंक जैसे संस्थानों और 'असर' जैसे स्वैच्छिक संगठनों के इस तरह के सर्वेक्षणों से हम आखिर क्या सीख रहे हैं? शायद कुछ भी नहीं.

सच तो यह है कि शिक्षा के क्षेत्र में हमारी सरकारें दावे तो लगातार करती रही हैं, पर सारी कथित कोशिशों का परिणाम निराशाजनक ही रहा है. सर्व शिक्षा अभियान और शिक्षा के अधिकार जैसे बहुप्रचारित कदमों के बावजूद देश को शिक्षित बनाने जैसे महत्वपूर्ण लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में हम लड़खड़ाते हुए ही आगे बढ़ रहे हैं. हालांकि सवाल यह भी उठता है कि इसे आगे बढ़ना भी कहा जा सकता है अथवा नहीं. आज हमारे सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 2.2 प्रतिशत ही हम शिक्षा पर खर्च कर रहे हैं और इतना भी खर्च किस तरह से हो रहा है, उसका अंदाजा परिणामों से लगाया जा सकता है. हम अपने बच्चों को न सही शिक्षा दे रहे हैं, न सही शिक्षक और न ही शिक्षा के लिए सही वातावरण.

यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार 14 वर्ष तक के बीस प्रतिशत बच्चे स्कूलों में पढ़ने नहीं जा रहे. क ख ग सीखने की उम्र में इन बच्चों को झाड़ू लगाना और बर्तन मांजना सीखना पड़ता है. और जो स्कूल जा रहे हैं ,उनके ज्ञान का नमूना भी हमने देख लिया है. देश की राजधानी दिल्ली से 40 किलोमीटर दूर के एक कस्बे में तीसरी कक्षा के एक तिहाई बच्चे अपनी मातृभाषा भी नहीं पढ़ पा रहे थे. जब भी ऐसी कोई रिपोर्ट आती है, थोड़ी सुगबुगाहट होती है और फिर सब पुराने ढर्रे पर चलने लगता है. इन रिपोर्टों को नजरंदाज करना मुश्किल नहीं है, ऐसे संगठनों को भी 'पांच सितारा एक्टिविस्ट' कहकर उनकी उपेक्षा की जा सकती है, लेकिन प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में हो रही अनदेखी और उपेक्षा हमारे समूचे भविष्य पर एक सवालिया निशान लगा रही है.

कितने छात्र, कितने स्कूल, कितने अध्यापक से अधिक महत्वपूर्ण सवाल कैसे छात्र, कैसे स्कूल और कैसे अध्यापक हैं. आज देश में प्रति छात्र पर प्रति वर्ष साढ़े चार हजार रुपए खर्च हो रहा है. सवाल यह नहीं है कि यह राशि पर्याप्त है या नहीं, सवाल यह है कि इस व्यय का परिणाम क्या निकल रहा है. हमारी सरकारें कहीं लैपटॉप बांट रही हैं, कहीं साइकिलें, लेकिन सवाल यह है कि लैपटॉप से हम बच्चों को सिखा क्या रहे हैं और साइकिलों से जिन स्कूलों में पहुंचा रहे हैं, उन स्कूलों में कैसी व्यवस्था दे रहे हैं हम शिक्षा के लिए. विश्व बैंक या 'असर' या यूनेस्को के सर्वेक्षण हमारे लिए आंख खोलने वाले होने चाहिए. पांचवीं का बच्चा क्या पढ़ रहा है, यह महत्वपूर्ण है, लेकिन यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं कि वह दूसरी कक्षा की किताब क्यों नहीं पढ़ पा रहा. अध्यापक क्या सिखा रहे हैं, यह महत्वपूर्ण है, लेकिन यह कम महत्वपूर्ण नहीं कि वे खुद क्या कुछ सीखे हुए हैं. शिक्षा का अधिकार बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन यह उससे अधिक महत्वपूर्ण है कि इस अधिकार का उपयोग कैसा हो रहा है.

बरसों पहले एक विज्ञापन आया करता था दूरदर्शन पर- एक ग्रामीण महिला अपना नाम लिखना सीखती हुई दिखाई गई थी. पिछले ही साल बिहार के एक गांव में पांचवीं कक्षा के 95 में से 91 विद्यार्थियों ने छात्रवृत्ति के लिए आवेदन देते समय अपना नाम गलत लिखा था. हमारी प्राथमिक शिक्षा की अराजक और शोचनीय स्थिति पर इससे सटीक टिप्पणी और क्या हो सकती है? सवाल यह है कि हम इस चिंता को कितना समझ रहे हैं? ■■

सेहत के बिना स्वच्छता अभियान

आलोक मेहता
वरिष्ठ पत्रकार

विश्व स्वास्थ्य दिवस पर बड़े विज्ञापन, गुलदस्ते, लंबे भाषणों वाले कार्यक्रम, वायदे, शपथ, तालियां चाय-नाश्ता-भोजन और गुड बाय. यों पोलियो, टीबी, मधुमेह, हृदयरोग इत्यादि बीमारियों से रक्षा के लिए विशेष दिवस मनाते रहते हैं. निश्चित रूप से जागरूकता के लिए ऐसे प्रयास एक हद तक उपयोगी हैं. लेकिन करीब डेढ़ अरब आबादी वाले देश में वार्षिक धार्मिक अनुष्ठान की तरह जाप करने मात्र से क्या देश की सेहत सुधर सकती है? प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के 'स्वच्छ भारत' अभियान में अनेक नामी हस्तियों के संदेशवाहक बनने से क्या सचमुच हर बस्ती की गंदगी साफ हो जाएगी? शिक्षा के अधिकार के तहत 14 वर्ष की आयु तक के हर बच्चे को शिक्षा का सुख मिल सकेगा? जी हां, सब संभव है- यदि बच्चे से बूढ़ों तक को स्वस्थ रखने की न्यूनतम अच्छी सुविधाओं की व्यवस्था हो सके. ऐसा न होने पर 33 करोड़ देवताओं की पूजा-अर्चना की तरह 'सबके सुखी और स्वस्थ' रहने की कामना मात्र की जाती रहेगी. वित्त मंत्री अरुण जेटली ने इस बार का बजट (वर्ष 2015-16) पेश करते हुए सबके सुख और स्वास्थ्य रक्षा का वाक्य मीठी संस्कृत में अवश्य बोला, लेकिन यह मनोकामना पूरी करने के जैसा कोई प्रावधान नहीं किया. अपने सहयोगियों को मरहम लगाने वाले अंदाज में करीब 33 हजार करोड़ रुपए का प्रावधान 'स्वास्थ्य' मंत्रालय के लिए किया. दिखाने को अहसान यह कि यह राशि तीन हजार करोड़ अधिक यानी पिछले साल से एक प्रतिशत से अधिक है. जबकि 'उदार' प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के सत्ता में आने के तत्काल बाद जुलाई-अगस्त 2014 के बजट में चतुर वित्त मंत्री ने स्वास्थ्य खाते में पहले से हुए 30 हजार करोड़ के प्रावधान में कटौती करके लगभग 24 हजार करोड़ की व्यवस्था कर दी थी. सो, छह हजार करोड़ बचाकर इस साल तीन हजार करोड़ बढ़ाने का श्रेय लेने का उपक्रम कर लिया. धन्य है-'वफादार मुनीमजी' का बही-खाता.

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दावा तो यही करता है कि उसके स्वयंसेवकों ने भाजपा को न केवल स्थापित किया, उसे सत्ता भी दिलाई. निश्चित रूप से सत्तारूढ़ भाजपा के अधिकांश सदस्य संघ और विद्यार्थी परिषद से निकले हैं. संघ तो अपनी शाखाओं के जरिए सुबह-शाम 'स्वस्थ शरीर-स्वस्थ सशक्त राष्ट्र की दुहाई देता है, तो क्या सत्ता मिलते ही स्वयंसेवक राष्ट्र के स्वास्थ्य की चिंता भूल जाते हैं? मंत्री, सांसद, विधायक बनते ही सरकारी संस्थानों में ही नहीं सबसे बड़े अस्पतालों में भी उन्हें मुफ्त या अधिक ईमानदारी दिखाने पर रियायती फीस पर श्रेष्ठतम चिकित्सा सुविधाएं मिल गईं, लेकिन दुनिया की सबसे बड़ी पार्टी के दस करोड़ से अधिक सदस्यों के दावेदार और संघ के निष्ठावान सदस्यों, उनकी समर्थक अथवा असहमत मध्यम अथवा निम्न आय वर्ग के 'भारतीयों' को अच्छी चिकित्सा सुविधाएं कैसे मिलेंगी?

> प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के 'स्वच्छ भारत' अभियान में अनेक नामी हस्तियों के संदेशवाहक बनने से क्या सचमुच हर बस्ती की गंदगी साफ हो जाएगी?

मोदीजी ही नहीं हम सब यह कहने में गौरव महसूस करते हैं कि अब चीन, अमेरिका, जापान, यूरोप, रूस जैसे संपन्न देशों के सामने बराबरी के स्तर पर खड़े होने की क्षमता रखने लगे हैं. संपन्न विकसित देशों के राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री या अन्य अतिथि देवता भी भारत की तरक्की से प्रभावित होकर तारीफ करते हैं. सच यह भी है कि अमेरिका, ब्रिटेन और आस्ट्रेलिया की 'स्वास्थ्य चिकित्सा' व्यवस्था भारतीय डॉक्टरों और नर्सों पर निर्भर है. वहां ज्यादती होने पर महात्मा गांधी के अंदाज में यदि भारतीय डॉक्टर घर वापसी का फैसला कर लें, तो लंदन, न्यूयॉर्क जैसे शहरों के अस्पताल और घरों में सैकड़ों लोग इलाज न मिलने से हाहाकार करते हुए मारे जाएंगे. दुनिया के श्रेष्ठतम डॉक्टर भारतीय ही माने जाते हैं, जिनमें से अधिकांश भारत के ही किसी छोटे-बड़े मेडिकल कॉलेज में पढ़ाई के बाद परदेस में अपनी योग्यता के बल पर जम गए हैं. दूसरी तरफ इंदिरा-राजीव गांधी के सत्ता काल में प्रोत्साहित एवं अटल, मनमोहन राज की उदार आर्थिक सुविधाओं के बल पर दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, कोलकाता, बेंगलुरु, कोच्चि जैसे शहरों में ऐसे पांच सितारा निजी अस्पताल स्थापित हो गए हैं, जो 'चिकित्सा पर्यटन' (मेडिकल टूरिज्म) के खाते में हर साल विदेशियों को ऑपरेशन सहित श्रेष्ठतम चिकित्सा सुविधाएं देकर करोड़ों रुपया कमा रहे हैं.

विडंबना यह है कि 'स्वास्थ्य कल्याण' के नाम पर केवल एक रुपए से कुछ हजार रुपए चुकाकर सरकार से अच्छी खासी जमीन तथा अन्य छूट पाने वाले कुछ बड़े अस्पताल लिखित शपथपत्र के बावजूद गरीबों के लिए निर्धारित बेड, ऑपरेशन तथा उपचार की मुफ्त सुविधा नहीं देते. फाइलों में खानापूर्ति के लिए जो दर्ज होता है, वह अस्पताल के प्रबंधन से जुड़े पूंजीपतियों, नेताओं या अफसरों और उनके परिवारों को दी जाने वाली मुफ्त इलाज की व्यवस्था का आंकड़ा होता है. सरकार ने इस बार भी बजट में कृपापूर्वक दिल्ली के अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) की तरह तमिलनाडु, जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश और असम में चिकित्सा संस्थान स्थापित करने का प्रावधान किया. पहले भी कुछ राज्यों में ऐसे संस्थान बनाने के प्रयास हुए हैं, लेकिन स्थापना में ही बरसों लग जाते हैं. फिर उनके रखरखाव और अच्छे डॉक्टरों, दवाइयों के इंतजाम में सरकारी ढिलाई, गड़बड़ियां, घोटाले सामने आने लगते हैं. निजी अस्पतालों की तुलना में एम्स जैसे संस्थानों के डॉक्टर अधिक योग्य, ईमानदार और समर्पित होते हैं. लेकिन उनके वेतन-भत्ते निजी संस्थानों से कई गुना कम होते हैं. कुछ साल बाद वे दुःखी होने लगते हैं. वहीं मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश में घोटालों के कारण महत्वाकांक्षी युवा प्रारंभिक दौर में ही विचलित होने लगते हैं. फिर भी बड़ी संख्या में मेडिकल कॉलेजों से अच्छे डॉक्टर निकलकर आ रहे हैं. सरकारें वर्षों से भाषण दे रही हैं, लेकिन मेडिकल की पढ़ाई पूरी करने के बाद कम से कम एक साल ग्रामीण क्षेत्रों में डॉक्टरी की ड्यूटी करने का लक्ष्य पूरा नहीं हो पा रहा है.

'मेक इन इंडिया' के नारे के प्रचार पर करोड़ों रुपए खर्च हो रहे हैं. लेकिन चिकित्सा उपकरणों के निर्माण के लिए करों-आयात शुल्क में नई छूट की कोई व्यवस्था इस बजट में नहीं हुई. इसलिए जरूरत नई श्रेष्ठतम स्वास्थ्य नीति और कार्यक्रम की है. शिक्षा के अधिकार की तरह हर नागरिक को 'स्वास्थ्य के अधिकार' का कानून बनाने में लिए संसद में सर्वानुमति बनाने में क्यों कोई कठिनाई होनी चाहिए? अधिकाधिक जनता स्वच्छ रहने पर ही सही में स्वच्छ, शिक्षित और सशक्त हो सकती है. ■■

केवल घूसखोरी ही नहीं है भ्रष्टाचार

अवधेश कुमार
जाने-माने पत्रकार

सरकारी स्तर पर भ्रष्टाचार के विरुद्ध जितनी आवाज पिछले करीब एक दशक में उठी है उतनी कभी नहीं उठी. दिल्ली में सत्तारूढ़ आम आदमी पार्टी का तो मुख्य यूएसपी ही भ्रष्टाचार के विरुद्ध हल्लाबोल रहा है. इसके पूर्वज संगठन का तो नाम ही था, इंडिया अगेन्स्ट करप्शन और पूरा अन्ना अभियान सरकारी भ्रष्टाचार को दूर करने व इनके द्वारा बनाए दस्तावेज जन लोकपाल को लागू करने के लिए था. इसलिए उसकी ओर पूरे देश की नजर रहती है कि आखिर वह भ्रष्टाचार के विरुद्ध क्या करती है और किस तरह करती है. इस संदर्भ में दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल और उप-मुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया ने भ्रष्टाचार निरोधक हेल्पलाइन 1031 को फिर से जारी कर दिया है. इसके द्वारा उन्होंने यही संदेश दिया कि वे भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपने तथाकथित संकल्प पर कायम हैं. केजरीवाल सरकार अपनी पिछली आयु 49 दिन को पार कर चुकी है. उसी उपलक्ष्य में दिल्ली के तालकटोरा स्टेडियम में आयोजित एक भव्य और विशाल आयोजन में हेल्पलाइन जारी किया गया. किंतु इसे इस तरह पेश किया गया मानो कोई अनोखा क्रांतिकारी कार्यक्रम आरंभ हुआ है. मनीष सिसोदिया नारा लगा रहे थे, 'भ्रष्टाचार का एक ही काल' और लोग कह रहे थे 'केजरीवाल केजरीवाल'. हालांकि यह वही हेल्पलाइन है जो पिछली सरकार के दौरान भी जारी हुआ था.

हर विवेकशील व्यक्ति चाहेगा कि इस हेल्पलाइन नंबर से आम आदमी को भ्रष्टाचार से लड़ने में सहायता मिले. साथ ही दूसरे राज्यों को भी इससे प्रेरणा मिले. लेकिन केजरीवाल और उनके साथियों का एनजीओ संस्कार हमेशा ऐसे किसी भी कदम में सामने आ जाता है. वे अपने हर कदम को क्रांतिकारी और अनोखा बताते हैं, जबकि वे जानते हैं कि इस तरह के हेल्पलाइन ज्यादातर राज्यों में चल रहे हैं. केंद्र में केंद्रीय सर्तकता आयोग सहित कई एजेंसियां ऐसी हेल्पलाइन लंबे समय से जारी किए हुए हैं. कुछ ईमेल हैं जहां आप गोपनीय शिकायत भी कर सकते हैं. किंतु क्या इससे सरकारी स्तर पर भ्रष्टाचार नियंत्रित हुआ? अगर ऐसे भ्रष्टाचार दूर होने लगे तो फिर कुछ करने की आवश्यकता क्या है? इनसे ही पूछा जाना चाहिए कि आपने अपने पिछले वो 49 दिन वाले अतीत में इस हेल्पलाइन से क्या हासिल किया? जो जानकारी बाहर आई उसके अनुसार पिछले कार्यकाल में इस हेल्पलाइन पर शिकायतें तो काफी आईं, पर कार्रवाई एक क्लर्क के खिलाफ ही हो सकी.

अरविंद केजरीवाल पता नहीं यह समझते हैं या नहीं कि भ्रष्टाचार केवल सरकारी घूस लेना ही नहीं है. सरकारी घूसखोरी तो इसका एक लक्षण है. भ्रष्टाचार में आचरण शब्द है. नेतृत्व के अपने आचरण से भी सत्ता प्रतिष्ठान के शेष अंग प्रभावित होते हैं. अभी उन्होंने योगेंद्र, प्रशांत जैसे अपने दल के संस्थापकों ही नहीं, इंडिया अगेन्स्ट करप्शन के समय से उनके साथ चलने वाले साथियों को जिस तरह अपमानित करके, निरंकुशता से हर ईकाई से बाहर करवाया उसे कैसा आचरण माना जाएगा? सदाचार या भ्रष्टाचार? इस प्रसंग का पूरा असर भ्रष्टाचार विरोधी कदमों पर पड़ेगा. जो कुछ केजरीवाल ने एक कार्यकर्ता के साथ टेलीफोन बातचीत में अपने वरिष्ठ साथियों के बारे में बोला, जो सार्वजनिक भी हो गया, जिस तरह से राष्ट्रीय कार्यकारिणी में अपने भाषण से उत्तेजना पैदा करके उनके लिए अपमानजनक स्थिति पैदा की वह बहुत बड़ा मानवीय और राजनीतिक भ्रष्टाचार है.

इससे और दूसरे कई आचरणों से केजरीवाल का लोकतांत्रिक संस्कार, सत्ता के प्रति निस्पृह होने, साथियों का सम्मान करने, आम आदमी की तरह व्यवहार करने, सामूहिक निर्णय करने आदि सारे दावों के आवरण उतर चुके हैं. नैतिक बल क्षीज चुका है. ■■

तोल बोल

कांग्रेस में फिर से जान फूंकने के लिए पार्टी को सड़कों और आंदोलनों की राजनीति का रास्ता अपनाना पड़ेगा.
■ जयराम रमेश, कांग्रेस नेता

एक समय ऐसा था जब फिल्म इंडस्ट्री में मुझसे अछूत की तरह व्यवहार किया जाता था. मैंने यह सब सहन किया है.
■ कंगना रानावत, फिल्म अभिनेत्री

gñWinHŠ gmXHŠ :
ñd. OdhabrIb XS
M`a_Z, E[SQ)a{a`b ~rS :
{dO~ XS
E{SQ)a-BZ-Mr\Š :
arOÐ XS
gmXH :
{dHŠg {_I ★
★ nr. A\a. ~r. HbZZ HŠ
AZgra gnU gmXHŠ` X\{`Ed
HŠ {bE {Oá_X\a.

© लोकमत समाचार _ àHŠ{eV g^r gr_Jr HŠ gd{YHŠa bIHŠ_V
_r{S`n àr`d0 {b. HŠ mg ga{j V h.
bIHŠ_V _r{S`n àr`d0 {b. HŠ {bE _DHŠ Ed àHŠeHŠ बालाजी मुले Ûàa
bIHŠ_V _r{S`n àr. {b., ¶bIQ HŠ. 192, 207, 208 E . A\B. Sr. gr.
B\S(fÑ) `b E[a`n, ~Qr~ar, ZxJna _[ÐV Ed bIHŠ_V ^dZ n.
OdhabrIb ZhêÎ _\J, ZxJna _ àHŠ{eV.
P.O.BOX NO. 230 R.N.I. No. 47101/89
XaÛd{Z : 0712-2423527 (7 bIB'g) \ŠSg : 6618555
Email : gmXHŠ` : lsedit.ngp@lokmat.com
{dkmZ : advt.ngp@lokmat.com {dVa\ : circ.ngp@lokmat.com

पाठकों के पत्र

किसान को सम्मान दें

इस वर्ष के यूनियन बजट में कृषि क्षेत्र एवं किसानों हेतु कोई खास प्रावधान नहीं किए गए हैं. बार-बार हो रही अकाल बारिश से विदर्भ के 76,411.50 हेक्टेयर में फसल का नुकसान हुआ है, जिसकी भरपाई तो सरकार करेगी ही, परंतु ऐसी स्थिति से निपटने के लिए स्थायी योजना अगर होती है, तो किसान आत्महत्या नहीं करेंगे. खेती उद्योग में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का अधिक अंतर्भाव करके उससे हर किसान को अनिवार्य रूप से जोड़कर लाभ दिलाने से किसान और खेतिहर अपने को सुरक्षित महसूस कर सकते हैं, उनमें आत्मविश्वास की वृद्धि हो सकती है और उनको खेती करने में गर्व और सम्मान महसूस हो सकता है. यह ध्यान रहे कि वह केवल अपने लिए ही अन्न-धान्य का उत्पादन नहीं करता है, बल्कि उसका उत्पादन देश के नागरिकों की भूख मिटाने का काम करता है. इससे देश की व्यवस्था में किसानों का भी महत्व कम नहीं है. उनको सम्मान देना जरूरी है.

■ फुलश्री अशोक कांबले, भद्रावती

इतिहास पर नजर 10 अप्रैल

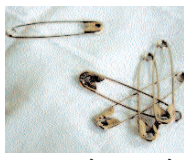

सेफ्टी पिन कितनी लोकप्रिय है, यह बताने की जरूरत नहीं है, लेकिन शायद ही किसी को पता हो कि कर्ज अदा करने के लिए राह ढूंढ़ते-ढूंढ़ते इसका आविष्कार हो गया. अमेरिकी मैकेनिक वॉल्टर हंट को आधुनिक सेफ्टी पिन का जनक माना जाता है. 10 अप्रैल, 1849 को उन्होंने सेफ्टी पिन को पेटेंट करवाया. इसके उत्पादन के अधिकार उन्होंने महज 400 डॉलर में डब्ल्यू.आर. ग्रेस एंड कंपनी को बेच दिए. उस कंपनी ने सेफ्टी पिन से अरबों डॉलर कमाए, लेकिन हंट खाली हाथ ही रह गए. हंट ने अपने मित्र से 15 डॉलर उधार लिए थे. उसे चुकाने का कोई रास्ता उन्हें नहीं सूझ रहा था. उन्होंने किसी चीज का आविष्कार कर कर्ज चुकाने का फैसला किया और इस तरह आधुनिक सेफ्टी पिन का जन्म हुआ. ■■

- 1710- ब्रिटेन में कॉपीराइट कानून लागू.
- 1845- रूस के सेंट पीट्सबर्ग शहर में आग से एक हजार से ज्यादा इमारतें खाक.
- 1894- प्रसिद्ध उद्योगपति घनश्यामदास बिड़ला का जन्म.
- 1973- पाकिस्तान में संविधान निलंबित.
- 1986- बेनजीर भुट्टो पाकिस्तान लौटीं.
- 1988- इस्लामाबाद के पास ओझरी में हथियार डिपो में विस्फोट, एक हजार से ज्यादा की मृत्यु.
- 2010- विमान हादसे में पोलैंड के राष्ट्रपति लेक कर्जिस्क सहित 96 लोगों की मौत.